भाव कर्म, द्रव्य कर्म

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

आत्मा या जीव कर्म परम्परा के अनुसार पुनर्जन्म करता है। कर्म मनुष्य के द्वारा किया जाता है। जन्म और कर्म की परम्परा अनादि अनन्त है। कर्मों के कारण ही आत्मा बन्धन में जाता है। जिस तरह से मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नये शरीर को धारण करता है। यह अन्तरालगत के कारण होता है। शरीर पंच भौतिक पदार्थों से बना हुआ है। भौतिक पदार्थ पुद्गल कहलाते हैं। पुद्गल चुतुस्पर्शी और अष्टस्पर्शी होते है। अष्टस्पर्शी पुद्गल नेत्र गोचर होते हैं और चतुस्पर्शी नेत्र गोचर नहीं होते। जब हम प्रवृत्ति करते हैं तो चतुस्पर्शी पुद्गल कषाय के साथ मिल जाते हैं। इसे कार्मण शरीर कहते हैं। आत्मा में विश्वास करने के कारण हमें कर्म में विश्वास करना पड़ता है। आत्मा कर्म का मिलन अशुभ योग है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप सच्चिदानन्द है। आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है। कर्म परमाणुओं के चिपकने से वे परमाणु दो रूप में बदल जाते हैं–भाव कर्म और द्रव्य कर्म। भाव कर्म पूर्वजन्म के किये हुए कर्म हैं। द्रव्य कर्म वर्तमान जीवन में उन्हीं कर्मों की परिणति है।

कर्म करने में मनुष्य स्वतंत्र है, किन्तु फल प्राप्त करने में वह स्वतंत्र नहीं है। फल ईश्वराधीन है। मनुष्य जन्म–जन्मातंर से कर्म कर रहा है और करता रहेगा। जन्म और कर्म की परम्परा अनादि अनन्त है। सभी प्रकार के वैषम्य का मूलकारण कर्म ही है। कर्म से ही मनुष्य सुख–दुःख प्राप्त करता है। जीव की शुभ–अशुभ प्रवृत्ति से आकृष्ट सुख–दुःख एवं आवरण के हेतु भूत पुद्गल स्कन्ध को कर्म कहते हैं। जीव की अपनी शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक शुभाशुभ क्रिया द्वारा या मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन कारणों से प्रेरित होकर रागद्वेषात्मक प्रवृत्ति से चुम्बक की तरह आकृष्ट आत्मा, जो करता है, वह कर्म कहलाता है। आत्मा और कर्म का सम्बन्ध क्रिया के द्वारा होता है। जब कर्म आत्मा के साथ बधते हैं तो

उनका फल भी भुगतना पड़ता है। इसीलिए कहा गया है कि अपना किया हुआ कर्म अपने को भुगतना पड़ता है।

रागद्वेषात्मक परिणाम अर्थात् कषाय भाव कर्म है, कार्मण जाति का पुद्गल–जड़तत्त्व विशेष, जो कषाय के कारण आत्मा के साथ मिल जाता है द्रव्यकर्म कहलाता है। जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है। जैनागमों में आठ कर्मों का उल्लेख मिलता है जिनसे बंधा हुआ जीव संसार में परिवर्तन करता है–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। ये आठ कर्म हैं। इन आठ कर्म प्रकृतियों को भी दो भागों में बांटा गया है–घातिकर्म और अघातिकर्म। जो कर्म पुद्गल आत्मा से चिपककर आत्मा के मुख्य या स्वाभाविक गुणों का घात करते हैं, उनको घातिकर्म कहते हैं। उन कर्मों का मूलोच्छेदन होने से ही आत्मा सर्वज्ञ या सर्वदर्शी बन सकता है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिकर्म कहलाते हैं। जो कर्म आत्मा के मुख्य या स्वाभाविक गुणों का घात नहीं कर पाते वे अघातिकर्म कहलाते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ये चार अघातिकर्म हैं। जैन दर्शन के अनुसार जब कोई कर्म किया जाता है तो उस कर्म के परमाणु आठ भागों में विभक्त हो जाते है, और आत्मा के स्वाभाविक गुणों को प्रगट नहीं होने देते। आत्मा अनन्तज्ञान सम्पन्न है। संसार में जितनी आत्माएं है, उन सबमें अनन्तज्ञान विद्यमान है। परन्तु ज्ञानावरणीयकर्म आत्मा के इस अनन्तज्ञान को आच्छादित कर देता है। जो कर्म आत्मा की साक्षात्कार करने की शक्ति के आवरण करने में निमित्त हैं वे दर्शनावरणीय कर्म हैं। दर्शनावरणीय कर्म प्रतिहारी के समान है। जैसे प्रतिहारी राजा के दर्शन में रुकावट डालता है, वैसे ही दर्शनावरणीय कर्म आत्मा की दर्शन शक्ति को आच्छादित कर देता है। जिन कर्मों के प्रभाव से आत्मा निजानन्द को भूलकर सांसारिक सुख–दुःख रूप फलों का अनुभव करता है उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। जो आत्मा के मोहभाव के होने में अर्थात् राग, द्वेष और मिथ्यात्व भाव के होने में निमित्त है वह मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्म मद्यपान करने के समान है।

आयुष्य कर्म के द्वारा आत्मा चारों गतियों में–नैरयिक, तिर्यक्, मनुष्य और देव में भ्रमण करता रहता है। आयुष्यकर्म बेड़ी के समान है। नामकर्म के प्रभाव से जीव शुभ या अशुभ शरीर की

रचना, प्रभाव आदि प्राप्त करता है, उसे नामकर्म कहते हैं। इसके मुख्य दो प्रकार हैं–शुभ और अशुभ। गोत्रकर्म के द्वारा जाति, कुल आदि की उच्चता, निम्नता होती है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं। गोत्र कर्म दो प्रकार का है–उच्च गोत्र और निम्न गोत्र। ये क्रमशः उच्चता–निम्नता, सम्मान और असम्मान के निमित्त बनते हैं। अन्तरायकर्म के कारण आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य की शक्ति में विघ्न–बाधाएं या रुकावटें आएं, पदार्थ पास में होते हुए भी उनका भोगोपभोग न हो सके, उसका नाम अन्तराय कर्म है। अन्तरायकर्म राजा के कोषाध्यक्ष के समान है। जिस प्रकार राजा का आदेश होने पर कोषाध्यक्ष के बिना दिये वह वस्तु नहीं मिलती, वैसे ही अन्तरायकर्म दूर हुए बिना इच्छित वस्तु नहीं मिलती। जैनदर्शन में कर्म का बड़ा ही वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। इस प्रकार भावकर्म और द्रव्यकर्म दोनों बंधन के कारण है। कर्मों से मुक्त हुए बिना आत्मा का शुद्ध स्वरूप दिखलाई नहीं देता। आत्मा और कर्म का योग बन्धन है।